वन्य जीव विनाश: ज़िम्मेदार कौन?

सुनील

वन्य प्राणियों की घटती संख्या आधुनिक दुनिया की एक प्रमुख चिंता है। कुछ प्रजातियां लुप्त होने की कगार पर है, और उनके संरक्षण के लिए कई कदम उठाए जा रहे हैं।

भारत में 1973 से प्रोजेक्ट टाइगर चलाया जा रहा है। शेरों और अन्य वन्य प्राणियों को बचाने के लिए राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य एवं टाइगर रिज़र्व बनाए जा रहे हैं। देश में अभी तक लगभग 600 राष्ट्रीय उद्यान एवं अभयारण्य अधिसूचित किए जा चुके है। इनमें से कई को प्रोजेक्ट टाइगर में शामिल करके करीब 30 टाइगर रिजर्व बनाए गए हैं।

इन तमाम क्षेत्रों में स्थानीय गांववासियों द्वारा जंगल के उपयोग - वनोपज संग्रह, चराई, निस्तार, खेती और निवास - पर तरह-तरह की पाबंदियां लगाई जा रही हैं। साल-दर-साल यहां के नियम कानूनों को और सख्त बनाकर ये पाबंदियां बढ़ाई जा रही हैं।

इन क्षेत्रों के अंदर बहुत सारे गांव भी हैं। करीब 40 लाख लोग यहां रहते हैं जिनमें से ज़्यादातर आदिवासी हैं। इन गांवों को हटाकर बाहर बसाने की भी मुहिम चल रही है। इन पाबंदियों और विस्थापन से गांववासियों पर काफी बड़ी मुसीबत आ गई है। कई जगह वे विरोध भी कर रहे हैं। लगभग हर संरक्षित क्षेत्र में वन विभाग और स्थानीय गांववासियों के बीच टकराव और असंतोष के हालात बने हुए हैं।

वन्य प्राणियों के संरक्षण की इन योजनाओं और नियम-कानूनों के पीछे यह सोच एवं मान्यता है कि उनके नष्ट होने का प्रमुख कारण वहां पर गांवों की मौजूदगी, उनके द्वारा जंगल का उपयोग और इसके कारण पैदा होने वाला दबाव है; यदि उन्हें हटा दिया जाए और जंगल में घुसने से रोक दिया जाए, तो वन्य प्राणी बच जाएंगे। इस मान्यता की कभी ज़मीनी जांच नहीं हुई। वैज्ञानिक अध्ययन एवं शोध भी इसकी पुष्टि नहीं करते।

आलोचकों का कहना है कि आदिवासी तो हज़ारों सालों से जंगलों में रह रहे हैं, जंगल एवं वन्य प्राणियों के साथ उनका सहअस्तिव रहा है। यदि उनके रहने से और उनके द्वारा जंगल के उपयोग से शेर एवं अन्य वन्य प्राणी नष्ट होते, तो कई सदियों पहले ही नष्ट हो जाने चाहिए थे। जंगलों एवं वन्य जीवन के नष्ट होने के दूसरे बाहरी कारण हैं, जिन्हें खोजा जाना चाहिए और दूर किया जा चाहिए।

पिछले कुछ समय में ऐसे अध्ययन एवं जानकारियां सामने आई हैं, जिनसे इस बहस का अंतिम फैसला हो जाना चाहिए। एक महत्वपूर्ण किताब 'भारत का वन्य जीवन इतिहास' कुछ साल पहले छपकर आई है। इसके लेखक वनों के एक प्रसिद्ध अध्येता श्री महेश रंगराजन है। श्री रंगराजन ने अच्छी तरह से बताया है कि भारत में जंगलों एवं जंगली जानवरों का सबसे बड़ा, व्यवस्थित और योजनाबद्ध विनाश अंग्रेज़ों के राज में हुआ था।

ज़्यादा से ज़्यादा राजस्व कमाने के चक्कर में अंग्रेज़ शासकों ने जंगल जमकर कटवाया, बेचा और खेती का विस्तार किया। खेती और पशु पालन के विस्तार में शेरों व अन्य जंगली जानवरों को एक रुकावट माना गया। श्री रंगराजन के अनुसार अंग्रेज़ी राज ने शेरों व जंगलों के खिलाफ एक तरह का युद्ध छेड़ दिया था। शेरों एवं अन्य हिंस्र पशुओं को मारने के लिए उन्होंने तथा उनकी देखादेखी देशी राजाओं ने इनाम घोषित किए थे। स्वयं अंग्रेज़ सरकार के रिकॉर्ड के मुताबिक 1875 से 1925 के बीच 80,000 से ज़्यादा शेर, 1,50,000 तेंदुए और 2,00,000 भेड़िए मारे गए थे। ये वे संख्याएं है, जिनके लिए इनाम दिए गए थे।

श्री रंगराजन का मानना है कि वास्तविक शिकार इससे तीन गुना ज़्यादा हुए होंगे। इसी अवधि में भारतीय चीता हमेशा के लिए लुप्त हो गया।

शिकार को मनोरंजन और मौज-मस्ती के एक खेल के रूप में भी इस काल में बहुत बढ़ावा मिला। विशेषकर राजा-महाराजाओं, नवाबों और जागीरदारों-जमींदारों ने इस काल में शिकार के सारे रिकॉर्ड तोड़ दिए। अंग्रेज़ों के पराधीन होने के बाद ये सब लोग फुरसत में थे। उनकी 'बहादुरी' की परीक्षा जंगलों में शिकार में ही होने लगी। हर राजमहल में शेरों व बारहसिंगों के मस्तक शोभा बढ़ाते टंगे रहते थे।

सरगुजा के महाराजा रामानुजशरण सिंहदेव सबसे बड़े 'शूरवीर' साबित हुए। उन्होंने अकेले 1180 शेरों और 2000 तेंदुओं का शिकार किया। उदयपुर महाराजा ने भी अपने जीवनकाल में एक हज़ार से अधिक शेरों को मारा। ग्वालियर के सिंधिया महाराजा और उनके मेहमानों ने 900 से अधिक शेर मारे। गौरीपुर और रीवा के राजा ने पांच-पांच सौ शेर मारे। रीवा रियासत के जंगलों में तो दुर्लभ सफेद शेर पाए जाते थे, जो अब लगभग लुप्त हो गए हैं। पिछले डेढ़ सौ सालों में 364 सफेद शेरों का शिकार हुआ है।

बीकानेर के महाराजकुमार सादुल सिंह की शिकार डायरी प्रकाशित हुई है, जिसके मुताबिक उन्होंने अपनी रियासत के अलावा भरतपुर, सौराष्ट्र, मध्यभारत और नेपाल की तराई तक और अफ्रीका के जंगलों में भी जाकर शिकार का शौक पूरा किया। सादुल सिंह ने कुल लगभग 50,000 जानवरों और 46,000 पक्षियों का शिकार किया, जिनमें एक सिंह और 33 शेर शामिल थे। टोंक के नवाब ने कुल 600 शेर मारे थे। जयपुर के कर्नल केसरी सिंह का दावा था कि उन्होंने शेरों के एक हज़ार से ज़्यादा शिकार में भाग लिया है। जयपुर की महारानी गायत्री देवी भी शिकार करने जाती थी। वे शादी से पहले कूचबिहार की राजकुमारी थी, जहां उन्होंने 5 वर्ष की उम्र में पहला शिकार किया था और 12 वर्ष की उम्र में एक तेंदुआ मार गिराया था।

शेरों और वन्य प्राणियों के इस कत्लेआम में अंग्रेज़ अफसर भी पीछे नहीं रहे। शिकार के लिए अंग्रेजी शब्द 'गेम' और पशु के सिर के लिए 'ट्रॉफी' शब्द इसी समय से भारत में प्रचलित हुए। वर्ष 1900 से पहले 400 शेरों को मारने वाले जॉर्ज मूल और 227 शेर मारने वाले मोन्टेग्यू गेरार्ड बड़े शिकारी थे। विलियम राइस ने 1850 से 1854 के बीच 158 शेरों का शिकार किया था। कर्नल नाइटेन्गल ने हैदराबाद रियासत में 300 से ज़्यादा शेरों को मारा। गार्डन कमिंग ने लगभग 100 शेर मारे। ब्रिटेन के महाराजा जार्ज पंचम और ब्रिटिश वायसरायों ने भी भारत में शेरों का शिकार किया। जिम कॉर्बेट के नाम से आज उत्तर भारत का एक प्रमुख राष्ट्रीय उद्यान है। उन्हें भारत में शेरों के संरक्षण का पुरोधा माना जाता है। वे भी प्रारंभ में एक शिकारी ही थे। कुमायू के नरभक्षी शेरों के शिकार के किस्सों की उनकी किताब ने उन्हें अंग्रेजी पाठकों में बहुत लोकप्रिय बनाया।

देश आज़ाद होने के बाद भी शेरों और अन्य जंगली जानवरों का शिकार खुलेआम चलता रहा। वर्ष 1972 में 'वन्य प्राणी संरक्षण कानून' बनने के बाद यह गैर कानूनी घोषित हुआ और रुका। एक अनुमान के मुताबिक 1900 में देश में लगभग 40 हज़ार शेर थे। अंधाधुंध शिकार के चलते 1972 तक उनकी संख्या घटकर 1800 रह गई थी। ज़ाहिर है, इस देश के शेरों व अन्य वन्य प्राणियों के विनाश के असली गुनहगार राजा-महाराजा-नवाब हैं जिन्हें 1972 के पहले वन्य प्राणियों को बचाने की सुध नहीं आई थी।

शेरों और अन्य जंगली जानवरों पर संकट आने का एक और बड़ा कारण जंगलों का सिमटते जाना है। बड़े बांधों, खदानों, कारखानों, राजमार्गों, शहरीकरण और खेती के विस्तार ने काफी जंगल निगल लिया है। अभी भी जंगलों पर आधुनिक विकास का यह अतिक्रमण जारी है। जंगल सिकुड़ते जा रहे हैं, वन्य प्राणियों के रहने की जगह व भोजन कम होता जा रहा है। वे खेतों और गांवों की ओर रुख कर रहे हैं तथा गांववासियों से उनका टकराव बढ़ता जा रहा है।

जंगल कम होते जाएंगे और जंगली जानवर बच जाएंगे, यह उम्मीद करना फिजूल है। विकास की पूरी दिशा बदले बगैर मात्र कुछ राष्ट्रीय उद्यान, अभयारण्य या टाइगर

रिज़र्व बनाकर वन्य प्राणियों को बचाने की कोशिश अपने आप में विसंगतिपूर्ण है, जिसके कारण कई समस्याएं पैदा हो रही हैं। इसके चलते वन क्षेत्रों में रहने वाले आदिवासियों एवं अन्य वनवासियों पर काफी अत्याचार हो रहे हैं। वे पहले से देश के सबसे दलित, वंचित, उपेक्षित और गरीब समुदाय हैं। जंगल और ज़मीन उनकी जिंदगी का प्रमुख सहारा हैं। उसे भी छीना जा रहा है। जिस गुनाह में उनकी कोई भागीदारी नहीं रही, उसकी सज़ा उन्हें दी जा रही है।

विडंबना यह है कि देश के जिस शासक वर्ग और अभिजात्य वर्ग ने शेरों का शिकार किया और जो आधुनिक विकास का भरपूर फायदा उठा रहा है, वही आज वन्य प्राणी संरक्षण का चैम्पियन बन गया है। एम.के. रणजीतसिंह स्वयं राजपरिवार से थे; 1972 के कानून का मसविदा तैयार करने में उनकी प्रमुख भूमिका रही। वन्य जीव संरक्षण की बढ़-चढ़कर हिमायत करने वाले कई लोग स्वयं महंगे वातानुकूलित घरों, दफ्तरों व गाड़ियों में रहते हैं, हवाई यात्राएं करते हैं, जंगलों की लकड़ी का बढ़िया से बढ़िया फर्नीचर इस्तेमाल करते हैं, लेकिन जंगलों में रहने वाले लोगों को कोई रियायत और अधिकार नहीं देना चाहते।

विडंबना यह भी है इन सारे राष्ट्रीय उद्यानों, अभयारण्यों एवं टाइगर-रिज़र्वों में इको-पर्यटन के नाम पर देशी-विदेशी सैलानियों को बुलाया जाता है और मौज-मस्ती की पूरी सुविधाएं दी जाती हैं। वे गाड़ियों से घने जंगलों में घूमते हैं, शोर मचाते हैं, प्लास्टिक का कचरा फैलाते हैं। इससे वन्य प्राणियों के जीवन में कोई व्यवधान नहीं होता है, लेकिन हज़ारों सालों से वहां रहने वाले आदिवासियों की पारंपरिक गतिविधियों से वन्य जीवन पर संकट आ जाता है, यह तर्क समझ से परे है।

मध्यप्रदेश का पचमढ़ी हिल स्टेशन एवं कस्बा, सतपुड़ा टाइगर रिज़र्व में पहाड़ों और जंगलों के बीचों-बीच स्थित है। टाइगर रिज़र्व के अंदर रहने वाले 60-65 आदिवासी गांवों को खाली कराने की मुहिम चल रही है। उनके जीवन पर कई पाबंदियां लगा दी गई हैं। लेकिन पचमढ़ी कस्बे, वहां के होटलों एवं वहां स्थित फौजी अड्डों को हटाने या वहां प्रति वर्ष आने वाले लाखों सैलानियों पर नियंत्रण की कोई चर्चा भी नहीं है। आदिकाल से वहां रहने वाले मूल निवासियों का कोई हक नहीं, और बाहर से आकर व्यवसाय एवं मौज-मस्ती करने वालों का पूरा हक बन गया? यदि शेर और वन्य प्राणियों की प्रजातियों को बचाना पूरे मानव समाज की ज़रूरत एवं प्राथमिकता है, तो सबसे पहले उन बड़े बांधों, खदानों, कारखानों, राजमार्गों, फौजी छावनियों, शहरों, होटलों और पर्यटन अड्डों को हटाना चाहिए जिन्होंने पिछले सौ-डेढ़ सौ सालों में जंगलों व शेरों के आवास पर अतिक्रमण किया है। इसकी बजाय हम निरपराध आदिवासियों को हटाने-मिटाने पर तुले हैं। क्या इसलिए कि वे आज की व्यवस्था में सबसे नीचे की पायदान पर स्थित सबसे गरीब एवं निरीह लोग हैं जिनकी कोई आवाज़ एवं ताकत नहीं है? यह भी एक प्रकार का नस्लभेद और साम्राज्यवाद है।

पिछले दिनों पारित वन अधिकार कानून से भी वनवासियों को कोई विशेष राहत नहीं मिल पाई है। सरकारी प्रतिष्ठानों में बैठे पर्यावरणीय कट्टरतावादी तत्वों ने इस कानून में यह प्रावधान डाल दिया है कि राष्ट्रीय उद्यानों और अभयारण्यों में 'संकटपूर्ण वन्य जीव आवासों' या 'कोर एरिया' में ग्रामवासियों के अधिकार खत्म किए जा सकते हैं। इस कानून के नियम बनाने में जानबूझकर बहुत देरी की गई। 1 जनवरी 2008 को नियम बनने के बाद लागू होने से पहले के डेढ़ महीनों में देश के सारे टाइगर रिज़र्वों में ताबड़तोड़ कोर एरिया की अधिसूचनाएं जारी कर दी गईं। इनके निर्धारण के लिए न तो कोई वैज्ञानिक अध्ययन या सर्वेक्षण कराया गया और न स्थानीय ग्रामवासियों को अपना पक्ष रखने का मौका दिया गया। किसी आदिवासी नेता या मंत्री ने भी इसका विरोध नहीं किया। दरअसल यह काम इतने गुपचुप ढंग से और फुर्ती से किया गया कि किसी को इसका पता भी नहीं चला।

वन क्षेत्रों के आदिवासियों पर दबाव, अत्याचार, अनिश्चितता एवं विस्थापन का कहर जारी है। मुंबई के ताज और ओबेराय पांच सितारा होटलों से अलग यह एक लगातार चलने वाली आतंकी प्रक्रिया है, जिसकी चर्चा कोई टीवी चैनल या अखबार का मुखपृष्ठ नहीं करता। आप चाहे तो इसे 'पर्यावरणीय आतंकवाद' कह सकते हैं। ***(स्रोत फीचर्स)***